International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(3): 39-44

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(3): 39-44
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-03-2021
Accepted: 26-04-2021

रंजय कुमार पटेल
शोधार्थी, शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चम्पारण, बिहार, भारत

Corresponding Author:
रंजय कुमार पटेल
शोधार्थी, शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चम्पारण, बिहार, भारत

शैक्षिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में मीमांसा दर्शन की उपादेयता

रंजय कुमार पटेल

सारांश
यद्यपि बींसवीं शताब्दी के एक नवयुवक के लिए दर्शन जैसी गम्भीर ज्ञानधारा पर कुछ भी लिखना कोई सहज कार्य नहीं है, फिर मीमांसा दर्शन तो और भी अधिक अगाध विचारशीलता, वैदिक अध्ययन, चिन्तन तथा मनन की अपेक्षा रखता है। तथापि वर्तमान समय में मीमांसा दर्शन से सम्बन्धित एक अच्छे अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई ताकि शैक्षिक जगत के लोगों का ध्यान इस दर्शन विशेष की ओर आकर्षित किया जा सके। विदित है कि वैदिक काल से ही आचार्य एवं शिष्य एक दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं, जिसे वर्तमान शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। मीमांसा दर्शन बहुत बड़ा विषय है, इसके एक–एक विषय पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ सृजित किये जा सकते हैं, जिसके तत्त्व को 5–10 पृष्ठ के एक लेख में रख देने का दावा करना अतिशयोक्ति के सिवा और कुछ नहीं है। यह एक ही विद्या अनेक विद्याओं का भण्डार है। हजारों उत्कृष्ट लेखकों के द्वारा भाष्य, टीका, वार्तिक आदि ग्रन्थों के रूप में इसका पोषण किया गया है। इस परिचयात्मक अध्ययन के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि मीमांसा दर्शन का आदि से अन्त तक अध्ययन कर लिया गया, फिर भी इतना अवश्य प्रयास किया गया है कि मीमांसा दर्शन के सम्बन्ध में कुछ सम्मति (महनीय विचार) स्थिर किया जा सके। अतः इस अध्ययन में संस्कृत साहित्य के आधार पर मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। आशा है कि इस अध्ययन का वर्तमान शैक्षिक जगत में स्वागत होगा।

प्रमुख शब्दः मीमांसा, दर्शन, अपूर्व, कर्मकाण्ड एवं स्वर्ग।

प्रस्तावना
साधारण शब्दों में जिसके द्वारा देखा जाये या सत्य का दर्शन किया जाये वह दर्शन है। उत्पत्ति काल से लेकर वर्तमान समय तक दर्शन की अनेकानेक परिभाषाएँ की जा चुकी हैं। विभिन्न शिक्षा दार्शनिकों ने इसे भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शब्दों में– 'दर्शन सत्य के स्वरूप की तार्किक विवेचना है' (लाल एवं पलोड़, 2012) [1]। प्लेटो के अनुसार– 'पदार्थों के सनातन स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना ही दर्शन है' (वही, पृष्ठ 85)। दर्शन सभी वस्तुओं को उनके अन्तिम तर्कों एवं कारणों के जरिये जानने का विज्ञान है। दर्शन विभिन्न विचारधाराओं के अनुसार शिक्षक एवं शिक्षार्थी का स्वरूप एवं उनके कर्त्तव्य निश्चित करता है (वही, पृष्ठ 98)। स्पेंसर ने लिखा है कि– 'वास्तविक शिक्षा का आयोजन वास्तविक दर्शन ही कर सकता है' (ओड़, 2016) [2]। रॉस के अनुसार– 'दर्शन व शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक में दूसरा निहित है, जहाँ दर्शन जीवन का विचारात्मक पक्ष तथा शिक्षा क्रियात्मक पक्ष है' (सक्सेना, 2009) [3]। इसी के साथ शिक्षा–दर्शन शिक्षाशास्त्र की वह शाखा है, जिसमें शिक्षा के सम्प्रत्ययों, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओं के सन्दर्भ में विभिन्न दार्शनिकों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। शिक्षा–दर्शन, दर्शन का ही एक क्रियात्मक पक्ष है, जिसका विवेचन अलग से न होकर दर्शन के अन्दर ही किया गया है। शिक्षा–दर्शन वास्तव में दर्शन होता है, क्योंकि उसमें भी अन्तिम सत्यों, मूल्यों, आदर्शों, आत्मा–परमात्मा, जीव, मनुष्य, संसार, प्रकृति आदि पर चिन्तन एवं उसके स्वरूप को जानने का प्रयास किया जाता है। दार्शनिक निरन्तर सत्य कि खोज मे लगा रहता है और ब्रह्माण्ड, प्रकृति आदि के बारे मे चिन्तन एवं कल्पना करता रहता है। शिक्षा बिना दर्शन के मूल्य विहीन है। शिक्षा एवं दर्शन के मध्य सम्बन्ध इससे भी स्पष्ट होता है कि जितने भी शिक्षाशास्त्री हुए हैं, वे सब महान दार्शनिक रहे हैं। शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा दर्शन के सिद्धान्तों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाया जा सकता है। अतः यह सत्य है कि शिक्षा द्वारा ही दर्शन का संरक्षण किया जा सकता है (शंखधर, 2019) [4]। भारतीय दर्शन में वेदों का महत्त्व सर्वज्ञात है तथा यह भी विदित है कि प्राचीन भारत में वेदों को परम प्रमाण माना जाता था। वेदों को मान्यता देने के कारण ही सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त ये षड्दर्शन आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं।

इन षड् आस्तिक दर्शनों में मीमांसा दर्शन अग्रणी है क्योंकि यह पूर्णतः वेदों पर आधारित है (निगम, 2008) [5]। विदित है कि मीमांसा दर्शन सोलह अध्यायों का है, किन्तु वर्तमान काल में द्वादशाध्यायी मीमांसा का ही अध्ययन–अध्यापन प्रचलित है। वस्तुतः इसका काम कोई नया दर्शन प्रस्तुत करना नहीं, वरन् वैदिक धर्म एवं मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या करना है (उपाध्याय, 2007) [6]। उल्लेखनीय है कि वैदिक संस्कृति का विकास दो प्रकार से हुआ है एक ओर तो वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थों के यज्ञ आदि कर्मकाण्डों का शास्त्रीय विकास हुआ तो दूसरी ओर उपनिषदों के ज्ञानकाण्ड के आधार पर वैदिक दर्शन का विकास हुआ। भारतीय दर्शन में इनका अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि इन्हीं से क्रमशः मीमांसा और वेदान्त दर्शन का विकास हुआ है (निगम, 2008) [5]। पहला कर्मकाण्ड पूर्व मीमांसा का मुख्य तो दूसरा ज्ञानकाण्ड उत्तर मीमांसा (वेदान्त) का मुख्य विषय है। यही कारण है कि मीमांसा और वेदान्त को सांख्य–योग तथा न्याय–वैशेषिक की तरह समान तन्त्र कहा जाता है (सिन्हा, 2018) [7]। इसका एक प्राचीन नाम 'न्याय' भी है क्योंकि मीमांसक वे प्रथम नैयायिक हैं जिन्होंने तर्क के द्वारा संदिग्ध विषयों पर सर्वप्रथम निर्णय दिया है। मीमांसा दर्शन में वैदिक कर्मकाण्डों की समस्याओं और शंकाओं का समाधान किया गया है, इसी कारण दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए भी इसकी उपादेयता बढ़ जाती है, परन्तु अन्य पक्ष इसे इसलिए दर्शन मानने से इनकार करता है कि इसके मूल सूत्र ग्रन्थ में प्रमाणों के अतिरिक्त और किसी भी दार्शनिक तत्त्वों का समावेश नहीं किया गया है। मीमांसा का मुख्य विषय धर्म को जानना तथा वेदार्थ का विचार करना है। मीमांसा में प्रमाणों का विचार अन्य दर्शनों की तरह केवल दार्शनिक प्रमेय को जानने के लिए नहीं है अपितु आत्मा, मुक्ति, शरीर, इन्द्रिय आदि दार्शनिक तत्त्वों के विवेचन से भी है।

मीमांसा शब्द से अभिप्राय

मीमांसा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'मान्' धातु में 'सन्' प्रत्यय के योग से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है– 'जिज्ञासा (जानने की इच्छा)' या 'विचार करना'। सर्वप्रथम यह शब्द वैदिक कर्मकाण्ड विषयक जिज्ञासा के लिए होता था। श्रुतियों के पारस्परिक विरोध का परिहार करके उनमें एक रूपता स्थापित करने के लिए जो विचार–विमर्श किया जाता था उसे मीमांसा कहते थे। कालान्तर में इस शब्द का प्रयोग किसी भी विषय के समीक्षात्मक विवेचन के लिए होने लगा एवं व्याख्या करना, समीक्षा करना, पूजित विचार, पूजित जिज्ञासा, संचित विचार, खोज, गम्भीर छानबीन तथा अनुसंधान सम्बन्धी विचार इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हो गये (शर्मा, 2013) [8]। 'मीमांसते' क्रियापद तथा 'मीमांसा' संज्ञापद दोनों का प्रयोग ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों में मिलता है। अतः किसी वस्तु के स्वरूप का यथार्थ निर्णय कराने की विधि को मीमांसा कहते हैं अथवा पक्ष–प्रतिपक्ष को लेकर वेद वाक्यों के निर्णीत अर्थ के विचार का नाम मीमांसा है (मुसलगाँवकर, 2016) [9]।

मीमांसा दर्शन की उत्पत्ति, आवश्यकता एवं विकास

हमें जो करना चाहिए और जैसा होना चाहिए जैसे प्रश्नों का समाधान धर्मशास्त्र या वेद ही कर सकते हैं, मीमांसा दर्शन की उत्पत्ति इन्हीं प्रश्नों की वास्तविक जानकारी के लिए हुई है। विद्वानों का तर्क है कि कर्मकाण्ड एवं ज्ञान के निरूपण में दिखाई पड़ने वाले आपाततः विरोधों को दूर करने का लक्ष्य लेकर मीमांसा दर्शन की आवृत्ति हुई है। मीमांसा दर्शन के विकास का कारण कर्म की यथार्थता को प्रमाणित करना कहा जाता है। विदित है कि मीमांसा के उद्भव का कारण जनता में कर्म और रीतियों के प्रति उत्पन्न संदेह था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मीमांसा शास्त्र का उद्भव उस समय हुआ था, जब बौद्धों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा था। बौद्धमत के उदय के पश्चात् वैदिक धर्म व वैदिक अनुष्ठानों पर बौद्धों के द्वारा बहुत आक्षेप किये जा रहे थे जिससे अनेक शंकाएं और विवाद होने लगी थी। लोग यह समझने लगे थे कि रीतियों और कर्मों का कोई मूल्य नहीं है, हवन, यज्ञ, बलि आदि कर्मों से कोई लाभ नहीं है। इससे लोग वैदिक धर्म, यज्ञ और बलि आदि क्रियाओं से हटने लगे थे। उस समय वेद की रक्षा के लिए मीमांसा शास्त्र की रचना की गयी (शर्मा, 2013) [8]। इसलिये उस समय यह आवश्यकता महसूस हुई कि हर कर्म के अर्थ को समझा दिया जाये तथा यह बतला दिया जाये कि किस कर्म से क्या फल मिलता है ? इसी की तर्क संगत व्याख्या मीमांसा दर्शन ने करना प्रारम्भ किया। मीमांसा ने न केवल कर्मकाण्ड की व्याख्या की अपितु इसको दार्शनिक धरातल पर स्थापित भी किया। इसीलिए मीमांसा को कर्म का दर्शन भी कहा जाता है (सहाय, 2008. सिन्हा, 2018. एवं मुसलगाँवकर, 2016) [10, 7, 9]।

मीमांसासूत्र या जैमिनि सूत्र

महर्षि परासर के शिष्य वेदव्यास हुए तथा वेदव्यास के शिष्य आचार्य जैमिनि ने 'मीमांसासूत्र' की रचना की (शर्मा, 2013 एवं सिन्हा, 2016) [8, 11]। दार्शनिक ग्रन्थों में यह सबसे बृहत् है। वर्तमान काल में उपलब्ध मीमांसा दर्शन में द्वादश अध्याय हैं, अतः इसे 'द्वादशलक्षणी' कहते हैं (सिंह, 2011) [12]। यहाँ लक्षण शब्द अध्याय वाचक है, अतः इसका एक अन्य नाम द्वादशाध्यायी भी है। यह मीमांसा दर्शन का आधार ग्रन्थ है। मूलतः इसको दो प्रकारों (भागों) में विभक्त किया गया है, जिसे उपदेश और अतिदेश कहते हैं। प्रथम भाग (पूर्व षट्क) के अध्यायों में उपदेश का विवेचन है तथा द्वितीय भाग (उत्तर षट्क) के छः अध्यायों में अतिदेश का विवेचन है। उक्त उपदेश अतिदेश द्वय विचारात्मक शास्त्र हैं। शास्त्र दीपिकाकार पार्थ सारथि मिश्र के अनुसार उपदेश विचार के अनन्तर अतिदेश विचार का आरम्भ होता है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद होते हैं, किन्तु तृतीय, षष्ठ और दशम अध्यायों में आठ–आठ पाद हैं, जिसे ''शबरा'' अध्याय भी कहते हैं। इस तरह सम्पूर्ण ग्रन्थ में साठ पाद हैं। मीमांसा के मूल ग्रन्थ में सूत्रों की संख्या 2745 बताई गई है, जबकि वर्तमान में उपलब्ध मीमांसा दर्शन के संस्करणों में यह संख्या अलग–अलग पाई जाती है। श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य के शाबर भाष्य संस्करण (सन् 1883, कलकत्ता) में सूत्रों की संख्या 2722 है। षड्दर्शन के प्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य उदयवीर शास्त्री ने अपने संस्करण में सूत्रों की संख्या 2731 मानी है। परम् पूज्य गुरुदेव ने मीमांसा दर्शन के अपने संस्करण में सूत्रों की संख्या 2742 दी है। इन सभी संस्करणों के समीक्षात्मक अध्ययन व अनुसन्धान के बाद संशोधित संस्करण में सूत्रों की संख्या 2741 स्वीकार की गयी है, जो हर दृष्टि से युक्तियुक्त है तथा बारह अध्यायों में विभक्त है (मुसलगाँवकर, 2016) [9']।

मीमांसा दर्शन के आचार्य तथा साहित्य

प्रायः जैमिनि को पूर्व मीमांसा का तथा बादरायण (वेदव्यास/कृष्ण द्वैपायन) को उत्तर मीमांसा का प्रतिपादक आचार्य माना जाता है। किन्तु कुछ विद्वान् जैमिनि को मीमांसा का प्रवर्तक नहीं मानते, क्योंकि उन्होंने स्वयं कई पूर्व मीमांसक आचार्यों का उल्लेख किया है, जिनकी कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं (शर्मा, 2013) [8]। आचार्य जैमिनि के पश्चात् अनेक महान आचार्य हुए। फलतः मीमांसा सूत्र पर भाष्य एवं टीकाएँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखी गई जिससे मीमांसा साहित्य सम्पन्न हुआ। जैमिनि के मीमांसा सूत्र पर शबर स्वामी का भाष्य है। इनका 'शाबर भाष्य' पाण्डित्य एवं रोचक शैली के कारण पातंजल महाभाष्य तथा शांकर भाष्य के समकक्ष रखा जाता है। शाबर भाष्य के बाद तीन मीमांसकों का नाम आता है– कुमारिल भट्ट, प्रभाकर और मुरारी मिश्र। इन्हें भाट्टमत, गुरूमत और मुरारी मत कहा जाता है। कुमारिल भट्ट (700 ई.) ने शबर भाष्य पर तीन विशाल वृत्तिग्रन्थ लिखी जिनका नाम 'श्लोकवार्तिक', 'तन्त्रवार्तिक' और 'तुप्टीका' है (सिंह, 2011) [12]। 'श्लोकवार्तिक' 'शाबर भाष्य' के पहले अध्याय के 'तर्कपाद' पर लिखा गया है और इसका बहुत बड़ा दार्शनिक महत्त्व है। पार्थसारथि मिश्र (900 ई.) ने 'श्लोकवार्तिक' पर 'न्याय रत्नाकर' नामक टीका लिखी। उसने

कुमारिल का अनुसरण करते हुए मीमांसा पर 'शास्त्रदीपिका' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा (सिन्हा, 2016) [11]। शाबर भाष्य पर कालान्तर में अनेक टीकाएँ लिखी गई और इस तरह मीमांसा दर्शन आगे बढ़ता गया। उल्लेखनीय है कि आचार्य जैमिनि आदि के अतिरिक्त उस काल के आस–पास कुछ और आचार्यों ने वैदिक कर्मकाण्ड की मीमांसा की थी जिनमें प्रमुख है, आत्रय, आश्मरथ्य, कार्ष्णाजिनि, बादरि, ऐतिशयन, कामुकायन, लाबुकायन तथा आलेखन आदि किन्तु इनकी रचनाएँ अनुपलब्ध हैं (सहाय, 2008)[10]।

मीमांसा दर्शन का प्रतिपाद्य विषय तथा प्रयोजन

मीमांसा दर्शन का प्रधान विषय 'धर्म' है, धर्म की व्याख्या करना ही इस दर्शन का मुख्य प्रयोजन है। इसलिए धर्म जिज्ञासा वाले प्रथम सूत्र– 'अथातो धर्मजिज्ञासा' के बाद द्वितीय सूत्र में ही सूत्रकार ने धर्म का लक्षण बतलाया है– चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः अर्थात् प्रेरणा देने वाला अर्थ ही धर्म है (सैंडल, 1999) [13]। कुमारिल भट्ट ने इसे 'धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्' के रूप में अभिव्यक्त किया है (शर्मा, 2020) [14]। धर्म मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होने वाली चीज नहीं है। धर्म एक शाश्वत् नियम है। वेद विहित शिष्टों से आचरण किये हुए कर्मों में अपना जीवन ढालना है। इस दर्शन में प्राप्त–अप्राप्त विवेक न्याय से, या अदग्ध–दहन न्याय से उद्देश्य–विधेय भाव का विचार कर वेद–वाक्यार्थ–निर्णय से कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान होता है (उपाध्याय, 2007) [6]। इसलिए धर्मज्ञान ही मीमांसा दर्शन का प्रयोजन है। इसमें सभी कर्मों को यज्ञों/महायज्ञों के अन्तर्गत समावेशित किया गया है। पूर्णिमा तथा अमावस्या में जो छोटी–छोटी इष्टियाँ की जाती हैं। इनका नाम यज्ञ और अश्वमेध आदि यज्ञों का नाम महायज्ञ है। मीमांसा का मुख्य विषय कर्म–विषयक वैदिक विधियाँ हैं। मीमांसा उन नियमों को निर्धारित करती है जिनके अनुसार अर्थ करने पर वैदिक विधि निषेधों के विरोधाभास दूर हो जाते हैं और उनमें एकवाक्यता आ जाती है। वैदिक कर्मकाण्ड के पीछे जो विश्वास छिपे हुए हैं उनका भी दार्शनिक समर्थन मीमांसा करती है (मिश्र, 1955) [15]। मीमांसा आत्मा, बाह्य जगत् और कर्म के नियम का अस्तित्व मानती है। वेदों का प्रामाण्य सिद्ध करने के निमित्त मीमांसा में प्रमा, प्रमाण और प्रामाण्य का विशद् विवेचन किया गया है। मीमांसा का ज्ञान विचार बहुत ही सूक्ष्म एवं गम्भीर है (कुमारी, 2020) [16]। कुमारिल भट्ट के अनुसार जैमिनि का प्रथम सूत्र 'अथातो धर्म जिज्ञासा' (सिंह, 2011) [12] वैदिक धर्म की व्याख्या है। इसी विचार के द्वारा अन्तःकरण को पवित्र किया जा सकता है। मीमांसा शास्त्र प्रत्येक जिज्ञासु के लिए आध्यात्मिक चिन्तन की शिक्षा देता है। धर्म का विचार करके यदि जीवन के सभी कर्म किये जायें, तो मानव जीवन का परम लक्ष्य अवश्य मिलेगा।

मीमांसा दर्शन में भावना

लौकिक वाक्यों की अपेक्षा वैदिक वाक्यों में कुछ विशेषता रहती है। लौकिक व्यवहार में किसी को किसी कार्य में प्रवृत्त कराने के लिए कोई अन्य पुरुष प्रवर्त्तक रहता है। किन्तु अपौरुषेय होने से वेद के द्वारा प्रवृत्ति कराने में किसी पुरुष की कल्पना नहीं की जा सकती। तथापि विध्यर्थक शब्द से प्रेरणा (प्रवर्तना) तो प्राप्त होती ही है। यह वैदिक प्रेरणा, विध्यर्थक शब्द में ही रहती है (सिंह, 2011) [12]। इसीलिये इस प्रेरणा को 'शाब्दी भावना' के नाम से जाना जाता है। प्रेरणा रूप शाब्दी भावना के पश्चात् प्रवृत्ति रूप आर्थी भावना होती है। दोनों भावनाओं में साध्य, साधन और इतिकर्त्तव्यता नामक तीन अंश हुआ करते हैं। यागादि कर्मों का नाम निर्धारण भी शास्त्रोक्त तत्प्रख्यातादि हेतुओं के आधार पर ही किया जाता है (झा, 2013)।

ज्ञान मीमांसा

किसी वस्तु के स्वरूप को प्रकाशित करना ही ज्ञान का प्रयोजन है, परन्तु विषय के स्वरूप का प्रकाश तभी होगा जब ज्ञान भी निर्दोष हो। इसी दोष रहित ज्ञान को मीमांसा में प्रमा और इसके करण को प्रमाण कहा गया है। परन्तु मीमांसा के अनुसार प्रमा और प्रमाण दोनों एक ही हैं। प्रमा अज्ञात या अनधिगत ज्ञान है। प्रमा से हमें सर्वदा नये विषय का ज्ञान प्राप्त होता है (सिंह, 2011) [12]। मीमांसा सत्य को स्वतः प्रकाश्य मानती है। अभिप्राय यह है कि मीमांसा दर्शन स्वतः प्रामाण्यवाद का पोषक है, जिसके अनुसार ज्ञान का प्रामाण्य उस ज्ञान की उत्पादक सामग्री में ही विद्यमान रहता है, कहीं बाहर से नहीं आता और ज्ञान उत्पन्न होते ही उसके प्रामाण्य का भी निश्चय हो जाता है, यथा– 'प्रामाण्यं स्वतः उत्पद्यते स्वतः ज्ञायते च' (सिन्हा, 2018) [7]। इस प्रकार ज्ञान के प्रामाण्य की उत्पत्ति और ज्ञप्ति दोनों स्वतः है।

तत्त्व मीमांसा

तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से मीमांसक वस्तुवाद या बहुतत्त्व वाद को स्वीकार करते हैं। मीमांसा दर्शन में जगत् एवं आत्मा के अस्तित्व को तो सत्य स्वीकार किया गया है किन्तु जगत् के रचयिता या मोक्ष प्रदाता के रूप में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है (शर्मा, 2013) [8]। यद्यपि मीमांसक अनेक देवताओं का अस्तित्व स्वीकार करते हैं जिससे कि उन्हें यज्ञ में आहुतियाँ दी जा सके। मीमांसा दर्शन कार्य–कारण के सम्बन्ध की व्याख्या में एक नवीन दृष्टिकोण को अपनाती है। इसके अनुसार कार्य की उत्पत्ति के लिए कारण के अतिरिक्त 'शक्ति' को भी स्वीकार करनी चाहिए क्योंकि शक्ति एक विशिष्ट पदार्थ है। वैदिक कर्मों का फल स्वर्ग प्राप्ति है तथा निरतिशय सुख का ही दूसरा नाम स्वर्ग है (चट्टोपाध्याय, 1965) [18]। स्वर्गकामो यजेत इस वाक्य से यज्ञ सम्पादन का प्रयोजन स्वर्ग की कामना ही है (शर्मा, 2013) [8]। कर्मकाण्ड की उपादेयता मीमांसा को मान्य है। अतः वह कर्म को ही ईश्वर मानती है। इसीलिए प्राचीन मीमांसा निरीश्वरवादी स्वयं सिद्ध होती है।

मीमांसा दर्शन में कर्म का स्वरूप

वैदिक दर्शन का प्राणतत्त्व मीमांसा दर्शन ही है। प्रधानतः कर्म का विचार करने के कारण मीमांसा दर्शन 'कर्ममीमांसा' या 'धर्ममीमांसा' भी कहलाती है (शर्मा, 2013) [8]। अतः मीमांसा 'कर्म का दर्शन' है। इस जगत् में कर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। कर्म करने से फल अवश्यमेव उत्पन्न होता है। भगवान बादरायण ईश्वर को कर्म फल का दाता मानते हैं, किन्तु आचार्य जैमिनि कर्म को ही फलदाता मानते हैं। उनके अनुसार यज्ञ कर्म से ही तत्तत् फल उत्पन्न होते हैं। साधारणतया मनुष्य दुःखों से छुटकारा पाने तथा इच्छापूर्ति के द्वारा सुख प्राप्ति के लिए कर्म करता है। मूलतः 'अर्थकर्म' और 'गुणकर्म' के भेद से 'कर्म' के दो प्रकार बताये गये हैं। जो कर्म आत्मगत अपूर्व उत्पन्न करते हैं, उन्हें 'अर्थकर्म' कहते हैं, जैसे– अग्निहोत्रकर्म, दर्शपूर्णमासकर्म, प्रयाजकर्म आदि। जिन कर्मों से संस्कार उत्पन्न होता है, उन कर्मों को 'गुणकर्म' कहते हैं। यह गुणकर्म भी 'उपयुक्तसंस्कारक' और 'उपयोक्ष्यमाणसंस्कारक' भेद से दो प्रकार का बताया गया है। उपयुक्तसंस्कारक कर्म को ही 'प्रतिपत्तिकर्म' कहते हैं। यह प्रतिपत्तिकर्म भी प्रधान याग के पश्चात्, प्रधान याग के समय और प्रधान याग के पूर्व होने से तीन प्रकार का होता है। इसी के साथ उपयोक्ष्यमाणसंस्कार भी अनेक प्रकार का होता है, जैसे– (1) साक्षात् विनियुक्त पदार्थ का संस्कार। (2) साक्षात् विनियुक्त पदार्थ पर उपकार करने वाले पदार्थ का संस्कार। (3) जिसका विनियोग किया जा रहा है, उसका संस्कार।

अपूर्व का सिद्धान्त

मूलतः मीमांसा दर्शन अनीश्वरवादी दर्शन रहा है जो कि ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न कर संसार में एक अदृष्ट शक्ति की सत्ता को स्वीकार करता है और इसी शक्ति से कार्य उत्पन्न होते हैं। कारण से कार्य उत्पन्न नहीं होता। इस लोक में किया गया कार्य एक अदृष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव करता है जिसे मिमांसाकार 'अपूर्व' कहते हैं। अपूर्व का सिद्धान्त मीमांसकों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसे शक्ति, शक्तिवाद या कर्मवाद सिद्धान्त के नाम से भी जानते हैं। मीमांसा के अनुसार अपूर्व एक अदृश्य शक्ति है जो कर्मफल का निर्णायक है। अपूर्व ही कर्म और फल को बांधने वाली बीच की

कड़ी है (शर्मा, 2013) [8]। यज्ञादि कर्म हम इस लोक में करते हैं तथा इस कर्म का फल स्वर्गादि परलोक में मानते हैं। कर्म तो नष्ट हो जाता है फिर उसके फल की प्राप्ति कैसे होती है ? यजमान वर्तमान काल में यज्ञ करता है, परन्तु भविष्य काल में उसे स्वर्गादि फल प्राप्त होगा, यहाँ स्पष्ट विरोध दिखलायी देता है। इसी विरोध का परिहार करने के लिए मीमांसक अपूर्व को मानते हैं। अपूर्व एक प्रकार की अदृश्य शक्ति है जो कर्म करने से उत्पन्न होती है और अपूर्व से ही फल उत्पन्न होता है (सिंह, 2011) [12]। अतः कर्म और कर्म फल के बीच अपूर्व ही माध्यम है। हम यज्ञादि कर्म इस लोक में करेंगे जिससे अपूर्व नामक अदृश्य शक्ति का उदय होगा पुनः वही शक्ति हमें स्वर्गादि फल देगी।

ईश्वर विचार

मीमांसा दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को मानता है या नहीं इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। सामान्यतया मीमांसा दर्शन को निरीश्वरवादी ही समझा जाता है। प्राचीन मीमांसा ग्रन्थों के आधार पर ईश्वर की सत्ता बिल्कुल असिद्ध है। मीमांसा के अनुसार कर्म अपना फल स्वयं देते हैं। याज्ञिक कर्मों से अपूर्व उत्पन्न होता है तथा अपूर्व से स्वर्गादि फल की प्राप्ति होती है। इसमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। मीमांसक जगत् को नित्य मानते हैं। अतः इस दृष्टि से भी सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता मान्य नहीं है (चट्टोपाध्याय, 1965) [18]। इसी तरह मीमांसक वेद को नित्य अपौरुषेय मानते हैं। अतः वेदों के कर्ता के रूप में भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है (शर्मा, 2013) [8]। इस दृष्टिकोण के आधार पर मीमांसा को स्पष्टतः निरीश्वरवादी कहा जा सकता है। किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि मीमांसा ग्रन्थों में अनेक ऐसे अन्तर्साक्ष्य हैं, जो इसे ईश्वरवादी सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन मीमांसकों की तुलना में बाद के मीमांसकों, जैसे– कुमारिल, प्रभाकर, आपदेव, लौगाक्षिभास्कर आदि के ग्रन्थ को देखने से पता चलता है कि वे ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हैं। अतः सांख्य दर्शन के समान मीमांसा का भी निरीश्वर और सेश्वर दो रूप प्रतीत होता है। इनके मतानुसार यदि शास्त्र (वेद) को न माना जाय तो देव या परमात्मा की प्राप्ति व उसका ज्ञान असम्भव हो जायेगा। लौकिक साधनों से इन्द्रिय–अगोचर पदार्थों की जानकारी संभव नहीं है। परमात्मा के जानने से ही शास्त्र सार्थक हो सकता है, उदाहरणार्थ– 'सर्वशक्तौ प्रवृतः स्यात्तथा भूतोपदेशात' (सिंह, 2011) [12] अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्राप्ति के लिए सभी कर्मों में प्रवृत्ति होनी चाहिए। आचार्य बादरायण के अनुसार कोई चेतन पुरुष अवश्य है जो कृत कर्मों का फलदाता है वही चेतन ईश्वर है। पर जैमिनि ने ईश्वर की सत्ता के विषय में बताया कि यज्ञ (कर्म) स्वतः कर्मानुसार करने वाले को फल देता है। इस प्रकार फलदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता को नकारना प्राचीन मीमांसकों का विषय था। इससे स्पष्ट होता है कि जैमिनि और शबर की प्राचीन मीमांसा जहाँ निरीश्वरवादी है, वही कुमारिल और प्रभाकर की मीमांसा को ईश्वरवादी कहा जा सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कुछ मीमांसक निरीश्वरवादी थे तो कुछ ईश्वरवादी, अतः मीमांसा दर्शन को किसी एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता (मुसलगाँवकर, 2016) [9]।

मीमांसा दर्शन में बन्धन एवं जगत् का स्वरुप

मीमांसा दर्शन के अनुसार वासना और मोह की इच्छा से किये गये कर्म अनुचित कर्म हैं, जो मनुष्य के बन्धन का कारण बनते हैं। इनसे मुक्ति ही बन्धन नाश का उपाय है। वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान से कर्म बन्धन स्वतः समाप्त हो जाता है। इस हेतु मनुष्य के लिए उचित कर्म का अनुष्ठान अभीष्ट है, कर्म का परित्याग नहीं। अभिप्राय यह है कि कर्म करना आवश्यक है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से मीमांसा जगत् प्रपंच की नित्यता स्वीकार करती है। मीमांसा दर्शन के अनुसार जगत् को मिथ्या नहीं माना जाता, अपितु वह सत्य है। यह दर्शन बाह्यार्थ सत्तावादी है। इसके अनुसार जगत् के तीन तत्त्व हैं– (1) शरीर/भोगायतन– भिन्न–भिन्न आत्मा अपने पूर्व कर्मों को भोगती है। (2) ज्ञानेन्द्रिय/कर्मेन्द्रिय– सुख–दुःख उपभोग के साधन। (3) भोग विषय– वाह्य विषय/वस्तुएँ भोग विषय हैं (शर्मा, 2013) [8]।

आत्मा का स्वरुप

मीमांसक शरीर, मन, इन्द्रिय एवं बुद्धि से परे आत्म तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जो शरीर के मृत्यु के बाद भी नहीं मरता, जो कर्मानुसार पुनः शरीर धारण करता है और तब तक इस संसार में बार–बार आता है, जब तक कि उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती (शर्मा, 2013) [8]। मीमांसा दर्शन में आत्मा के स्वरूप को तीन रूपों में स्वीकार किया गया है– (1) आत्मा की अमरता– शरीर से भिन्न आत्मा को अजर–अमर मानना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इसी स्थिति में उसके कर्मों की सार्थकता है। इसके अनुसार धर्मानुसार किये गये वैदिक कर्मकाण्डों से मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है, किन्तु यह स्थिति तभी सम्भव है जब शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा बनी रहे। (2) आत्मा की अनेकता– मीमांसक आत्मा को अनेक मानते हैं। उनके अनुसार भिन्न–भिन्न जीवों में भिन्न–भिन्न आत्मा होती है। उनका तर्क है कि यदि ऐसा नहीं होता तो सभी लोगों का दृष्टिकोण एवं अनुभूति एक ही समान होती। (3) आत्मा की चेतना– आत्मा की चेतना के विषय में मीमांसकों में मतभेद है। प्रभाकर का मत है कि चौतन्य आत्मा का स्वरूप नहीं उसका आगन्तुक गुण है, जैसा कि नैयायिक भी कहते हैं। प्रभाकर इसका प्रमाण सुषुप्ति की अवस्था को देते हैं। इस अवस्था में आत्मा तो रहती है पर चेतना नहीं रहती। वस्तुतः चेतना आत्मा का आश्रय है। सुख–दुःख आदि के आश्रय के रूप में हम आत्मा के अस्तित्व को अनुमान द्वारा समझ सकते हैं। प्रभाकर के विपरीत कुमारिल का मत है कि चौतन्य आत्मा का स्वाभाविक धर्म है। कुमारिल ज्ञातारूपी आत्मा का मानस प्रत्यक्ष भी स्वीकार करते हैं। अर्थात् वे आत्मा को ज्ञेय मानते हैं जबकि प्रभाकर के अनुसार आत्मा ज्ञाता है, अतः कभी ज्ञेय नहीं हो सकती।

स्वर्ग और मोक्ष

प्राचीन मीमांसकों के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति अर्थात् निरतिशय आनन्द की प्राप्ति ही परम लक्ष्य था। उनके अनुसार वैदिक कर्मों का फल स्वर्ग की प्राप्ति माना गया है। उदाहरणार्थ 'स्वर्गकामो यजेत' अर्थात् 'स्वर्ग की इच्छा रखने वाले को यज्ञ करना चाहिए' (सिंह, 2011) [12]। यही उनके जीवन का आत्यन्तिक उद्देश्य था। परन्तु धीरे–धीरे जब मीमांसा दर्शन विकसित हुआ तब स्वर्ग के स्थान पर मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य माना गया (शर्मा, 2013) [8]। संभवतः इसका कारण स्वर्ग फल की अनित्यता है। यज्ञ करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति अवश्य होती है परन्तु निरतिशय सुख रूप स्वर्ग नित्य नहीं है। पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक में आकर बन्धन जन्य नाना प्रकार के दुःखों को सहना पड़ेगा। सकाम कर्मों के अनुष्ठान से पाप पुण्य रूप फल होता है, जिसको भोगने के लिए बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सकाम कर्म का कोई भी ऐसा फल नहीं है जो बिल्कुल सुख रूप ही हो। प्रत्येक सुख में दुःख छिपा हुआ है। जब फल की अवधि समाप्त हो जाती है तो पुनः दुःख प्रारम्भ हो जाता है। अतः सकाम कर्मों से क्षणिक अनित्य सुख की प्राप्ति होती है। अतः दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति कर्म सन्यास से संभव है। मीमांसको के अनुसार इस जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध विच्छेद को मोक्ष कहते हैं, यथा– 'प्रपंचसम्बन्धविलयो मोक्षः' अर्थात् सांसारिक सम्बन्धों का आत्मा के साथ समाप्त होना ही मोक्ष है (सहाय, 2008) [10]। इस स्थिति में आत्मा, चेतना विहीन हो जाती है और तब आत्मा द्वारा धर्म अधर्म का ज्ञान सदा के लिए समाप्त हो जाता है। इसी का परिणाम है पुनर्जन्म का न होना (ज्ञानानन्द, 1952) [19]।

प्रमाण विचार

'प्रमा' का अर्थ 'ज्ञान' है, पर प्रत्येक ज्ञान को प्रमा नहीं कहते अपितु यथार्थ ज्ञान को ही प्रमा कहते हैं। प्रमा के लिये मीमांसा के अनुसार पदार्थ का सत्य अर्थात् वास्तविक होना नितान्त आवश्यक है। प्रमा के करण (ज्ञान प्राप्ति के साधन) को प्रमाण कहते हैं। मीमांसक स्मृति और संशय को यथार्थ ज्ञान नहीं मानते। स्मृति को वे इसलिए प्रमा नहीं कहते क्योंकि स्मृति ऐसी वस्तु के विषय में बताती है, जो पहले से प्रत्यक्ष हो (सिन्हा, 2018) [7]। कुमारिल भट्ट ने यथार्थ ज्ञान की तीन विशेषता बताई है– (1) अज्ञात वस्तु का अनुभव (2) अन्य ज्ञान से बाधित न हो (3) दोष रहित होना। मीमांसकों में प्रमाण के प्रकार को लेकर मतभेद है। जैमिनि ने प्रमाण के तीन प्रकार माने हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। प्रभाकर ने इन तीनों के अतिरिक्त उपमान और अर्थापत्ति को भी प्रमाण माना है। अतः वे पाँच प्रमाण को स्वीकार करते हैं। कुमारिल भट्ट इनमें एक और प्रमाण अनुपलब्धि को जोड़ते हैं। इस प्रकार मीमांसा दर्शन में कुल छः प्रमाण माने गये हैं (मिश्रा, 2012) [20]। मीमांसा में प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी प्रमाणों को परोक्ष कहा गया है। इस प्रकार प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से ज्ञान के दो प्रकारों को मीमांसा मानती है।

मीमांसा दर्शन के प्रकार

सामान्यतः मीमांसा दर्शन के दो भाग हैं– 'पूर्व मीमांसा' तथा 'उत्तर मीमांसा'। पूर्व मीमांसा को 'मीमांसा' और उत्तर मीमांसा को 'वेदान्त' कहा जाता है। पूर्व मीमांसा कर्म का विचार करती है और उत्तर मीमांसा ज्ञान का विचार करती है। कर्म अर्थात् यज्ञ (याग) करना ही धर्म है और उसके अनुष्ठान से तत्त्व ज्ञान होता है (ज्ञानानन्द, 1952) [19]। भाव यह है कि मीमांसा कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है और वेदान्त ज्ञानकाण्ड से। इस प्रकार पूर्व मीमांसा तार्किक क्रम की दृष्टि से उत्तर मीमांसा से पहले आती है। मीमांसा का प्रथम सूत्र है– 'अथातो धर्म जिज्ञासा' अर्थात् इसीलिए धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए (सैंडल, 1999) [13]। यह वाक्य वेदान्त के प्रथम सूत्र 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' अर्थात् इसीलिए ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए का पूरक है, इससे स्पष्ट है वेद के दो पक्ष हैं कर्मकाण्ड, जिनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में है तथा ज्ञानकाण्ड जिनका उल्लेख उपनिषदों में है (सहाय, 2008) [10]।

मीमांसा दर्शन के सम्प्रदाय

मीमांसा शास्त्र के रचनाकार महर्षि जैमिनि के एक हजार वर्ष बाद कुमारिल भट्टाचार्य का समय माना जाता है, जो शंकराचार्य के समकालीन थे। वे मीमांसा शास्त्र के बड़े ही प्रसिद्ध विचारक थे। कुमारिल भट्ट का नाम मीमांसा के इतिहास में मौलिक सूझ, विशद् व्याख्या तथा अलौकिक प्रतिभा के लिये सुविख्यात है। कुमारिल भट्ट के समय में ही उनके शिष्य प्रभाकर ने भी मीमांसा दर्शन की बड़ी सेवा की किन्तु गुरु–शिष्य के विचारों में वैदिक कर्मकाण्ड तथा कई दार्शनिक प्रश्नों को लेकर बड़ा मतभेद रहा है। इन दोनों के भिन्न मतों के कारण दो भिन्न सम्प्रदाय मीमांसा दर्शन में चल पड़े। कुमारिल भट्ट के अनुयायी 'भाट्ट मत' के कहलाते हैं और प्रभाकर मिश्र के अनुयायी 'गुरु मत' के। जिन्हें भाट्ट मीमांसा और प्रभाकर मीमांसा भी कहते हैं। विदित है कि गुरुमत भाट्टमत से प्राचीन माना जाता है तथा कुमारिल ने प्रभाकर की कुशाग्र बुद्धि (अलौकिक कल्पना शक्ति) को देखकर इन्हें गुरु की उपाधि प्रदान की थी (शर्मा, 2013) [8]। प्रभाकर मिश्र ने शाबरभाष्य पर दो टीकाएँ लिखीं– 'बृहती' और 'लघ्वी'। प्रभाकर के अतिरिक्त कुमारिल भट्ट के एक और विद्वान् शिष्य थे मण्डन मिश्र। किन्तु एक बार शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित होने पर वे आचार्य शंकर के शिष्य बन गये और फिर विचार तो क्या ? इनका नाम भी बदल गया। शंकराचार्य के प्रसिद्ध विद्वान् शिष्य सुरेश्वराचार्य यही हैं। कुमारिल भट्ट तथा प्रभाकर के पश्चात् भी लम्बे समय (17वीं. शताब्दी) तक यह दर्शन फलता–फूलता रहा। इनके अतिरिक्त एक अन्य सम्प्रदाय मुरारी मिश्र का है– 'मुरारेस्ततीय पन्थाः' (कुमारी, 2020) [16]। ग्यारहवी शताब्दी के मुरारी मिश्र ने मीमांसा सूत्र पर एक बृहद् टीका लिखी तथा कुमारिल और प्रभाकर के समान इन्होंने मीमांसा के एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की जिसे 'मुरारी मत' कहा जाता है। मुरारी मिश्र ने 'त्रिपादी', 'नीतिनयन' और 'एकादशाध्यायाधिकरण' की रचना की थी। इस तरह मीमांसा दर्शन के कुल तीन सम्प्रदाय हैं।

मीमांसा दर्शन का प्रभाव

मीमांसा दर्शन का प्रभाव हिन्दू के जीवन पर सर्वाधिक पड़ा है। इस सन्दर्भ में डॉ. दासगुप्ता लिखते है– 'हिन्दुओं के नित्य–प्रति के धार्मिक कृत्य, पूजा–अनुष्ठान आदि की व्यवस्था मीमांसा में की गई है। स्मृति, जो धार्मिक नियमों का संकलन है, उसका आधार मीमांसा दर्शन ही है। ब्रिटिश काल में हिन्दुओं के सामाजिक जीवन नियमन के लिए जिस विधि और कानून का निर्माण किया गया है, वह भी इसके द्वारा निरूपित स्मृति और दर्शन के आधार पर ही हुआ है। उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति सम्बन्धी सारी व्यवस्था भी इसी दर्शन पर आधारित है'। डॉ. राधाकृष्णन् भी लिखते हैं– 'एक हिन्दू का जीवन वैदिक नियमों से शासित है और इसीलिए हिन्दू विधान की व्याख्या के लिए मीमांसा के नियम महत्त्वपूर्ण है। अतः वैदिक धर्म के ज्ञान के लिए मीमांसा दर्शन का अनुशीलन अत्यन्त उपादेय एवं आवश्यक है' (निगम, 2008) [5]।

निष्कर्ष

शैक्षिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक विचारधाराओं के रूप में प्रायः बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग एवं वेदान्त आदि का अध्ययन–अध्यापन निरन्तर रूप से हो रहा है। अतः इन्हीं के समानान्तर मीमांसा को भी एक सहचरी दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय विश्वविद्यालयों की स्नातक तथा परास्नातक (संस्कृत एवं दर्शन) के पाठ्यक्रमों में जहाँ भी भारतीय दर्शन की चर्चा आती है वहाँ मीमांसा दर्शन का अपना एक निजी स्थान सुरक्षित रहता है। मूलतः दर्शन का यह विषय केवल स्नातक एवं परास्नातक की कक्षाओं तक ही सिमित नहीं हैं, अपितु इसका अध्ययन–अध्यापन शिक्षक प्रशिक्षक संस्थाओं में भी हो रहा है। शैक्षिक क्षेत्र में पथ प्रदर्शन की आवश्यकता सतत् रूप से होती है, जिसे दर्शन पूरा करता है। दर्शन ही शिक्षा के लक्ष्यों, पाठ्यक्रमों एवं उपयोगी शिक्षण विधियों को निर्धारित करता है। दर्शन की सहायता के बिना कोई भी शैक्षिक योजना सफल सिद्ध नहीं हो सकती। इसी के साथ प्राचीन समय से ही भौतिक जीवन की तुलना में दार्शनिक जीवन को श्रेष्ठ माना जाता रहा है। शिक्षा और दर्शन का एक ही लक्ष्य मानव जीवन की उन्नति करना है। अतः उपरोक्त इन सभी सन्दर्भों की दृष्टि से मीमांसा दर्शन की उपादेयता स्वयं सिद्ध होती है।

सन्दर्भ

1. लाल, आर. बी. – पलोड़, एस. (2012). शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ.
2. ओड़, एल. के. (2016). शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर. ISBN 978–93–5131–223–9.
3. सक्सेना, एन. आर. एस. (2009). प्रिन्सिपल ऑफ एजुकेशन. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ.
4. शंखधर, एस. (2019). शिक्षा के दार्शनिक आधार. श्रीश शंखधर ब्लॉग. http://shrishshankhdhar.blogspot.com/2011/01/blog-post.html
5. निगम, एस. (2008). भारतीय दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 978–81–208–2416–4.
6. उपाध्याय, डी. एस. (2007). मीमांसा दर्शनम्. सत्यधर्म प्रकाशन, नई दिल्ली.
7. सिन्हा, एच. पी. (2018). भारतीय दर्शन की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 978–8120821446.

8. शर्मा, सी. (2013). भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 978–8120821347.
9. मुसलगाँवकर, जी. एस. (2016). मीमांसादर्शन का विवेचनात्मक इतिहास. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.
10. सहाय, एस. (2008). प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 978–8120823686.
11. सिन्हा, जे. (2016). भारतीय दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 978–8120821323.
12. सिंह, बी. (2011). भारतीय दर्शन. आशा प्रकाशन, वाराणसी.
13. सैंडल, एम. एल. (1999). मीमांसा सूत्राज ऑफ जैमिनि. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN 81–208–1129–1.
14. शर्मा, जी. (2020). अर्थसंग्रहः अनुसार धर्म विवेचनम्. गौरव शर्मा ब्लॉग. https://sanskritread.blogspot.com/2020/06/blog-post_94.html
15. मिश्र, एम. (1955). मीमांसा–दर्शन (महर्षि जैमिनि प्रवर्तित विचार–शास्त्र का समालोचनात्मक अध्ययन). रमेश बुक डिपो, जयपुर.
16. कुमारी, एम. (2020). भारतीय ज्ञान–मीमांसा (न्याय एवं अद्वैत वेदान्त). मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ैठछ 978–81–208–4268–7.
17. झा, के. (2020). मीमांसा के पारिभाषिक पदों का परिचय. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली. ISBN 978–93–82091–61–5.
18. चट्टोपाध्याय, डी. पी. (1965). भारतीय दर्शन सरल परिचय. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. ISBN 978–81–7178–6012–1.
19. ज्ञानानन्द, एस. (1952). कर्म मीमांसा दर्शन क्रियापद और मोक्षपद. मनोहर प्रेस, वाराणसी.
20. मिश्रा, एम. (2012). मीमांसा दर्शन में प्रमाण विचार. मनीष प्रकाशन, आगरा. ISBN 978–93–8172–160–5.